गौतम सरूप

बनाम

लीला जेटली व अन्य

(सिविल अपील संख्या 1808/2008)

7 मार्च 2008

(एस. बी. सिन्हा एवं वी. एस. सिरपुरकर जे.जे.)

साक्ष्य अधिनियम, 1872

धारा 58 - किसी पक्ष द्वारा लिस-स्वीकार्यता के लिए की गई स्वीकृति अभिनिर्धारितः उसके विरुद्ध स्वीकार्य - एक स्पष्ट स्वीकृति का विरोध नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसे समझाया या स्पष्ट किया जा सकता है - हालांकि, वैकल्पिक याचिका लेने की अनुमति है, यह परस्पर विनाशकारी नहीं होना चाहिए - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- आदेश 8 नियम 5।

अभिवचन में की गई स्वीकृति - किसी दस्तावेज में की गई स्वीकृति के समान नहीं है।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908:

आदेश 6 नियम 11 - लिखित बयान में संशोधन - प्रतिवादी संख्या 6 ने अपीलकर्ता के दावे को पूरी तरह से स्वीकार करते हुए लिखित बयान दाखिल किया - इसके बाद यह कहते हुए इससे मुकर गया कि लिखित बयान उसके द्वारा दाखिल नहीं किया गया था और उस पर हस्ताक्षर उसके नहीं थे - उसकी ऐसा साबित करने के लिए असफलता-अनुमति- उसके द्वारा लिखित बयान में संशोधन की मांग करते हुए आवेदन - माना गया: स्वीकार्य नहीं है। केवल स्पष्टीकरण जो उसके द्वारा पेश किया जा सकता था वह यह था कि कथित स्वीकृति उसके साथ धोखाधड़ी करके उससे ली गई थी और इसलिए, वह ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं। क्योंकि इस तरह के स्पष्टीकरण की पेशकश नहीं की गई है, निचले न्यायालयों द्वारा लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति गलत दी गई है।

वसीयतकर्ता ने अपनी संपत्तियों की वसीयत अपीलकर्ता और प्रतिवादी संख्या 7 के पक्ष में कर दी। अपीलकर्ता ने संपत्तियों पर अपने स्वामित्व की घोषणा और स्थाई निषेधाज्ञा की डिक्री के लिए मुकदमा दायर किया। प्रतिवादी क्रमांक 6 सम्मन प्राप्त होने पर एम.पी.वी., अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुए। वह वाद में दिए गए कथनों को स्वीकार करते हुए एक लिखित कथन दाखिल किया। हालांकि, उसने एक और लिखित कथन अपीलकर्ता के दावे को पूरी तरह से नकारते हुए और उस पर विवाद करते

हुए दर्ज कराया। उसने पहले दाखिल लिखित कथन को रिकॉर्ड से हटाने और उसके आधार पर एक और लिखित बयान दर्ज करने की अनुमति के लिए 28.8.2000 को एक आवेदन भी दायर किया कि उसने एम.पी.वी., अधिवक्ता को नियुक्त नहीं किया और न ही उनके माध्यम से कोई लिखित कथन दाखिल किया। उसने उक्त लिखित कथन पर अपने हस्ताक्षर से इन्कार कर दिया। उक्त आवेदन को ट्रायल कोर्ट ने अनुमति दे दी थी। अपीलकर्ता ने पुनरीक्षण दायर किया जहाँ उच्च न्यायालय ने ट्रायल कोर्ट के आदेश को रद्द करते हुए यह जाँच करने का निर्देश दिया कि क्या प्रतिवादी संख्या 06 ने कभी एम.पी.वी. अधिवक्ता को नियुक्त किया या उस रिटर्न स्टेटमेंट पर हस्ताक्षर किए थे जिसे रिकॉर्ड पर रखा गया था। यह निर्देशित किया गया था कि यदि उक्त जाँच के निष्कर्ष उसके पक्ष में जाते हैं तो वह दूसरा लिखित कथन दाखिल करने के लिए स्वतंत्र है या जो उसके द्वारा दायर किया गया है उसे स्वीकार किया जा सकता है। इसके अनुसरण में, पूछताछ की गई और यह राय दी गई कि प्रतिवादी संख्या 06 ने वास्तव में उक्त एम.पी.वी. को अपना वकील नियुक्त किया था और 30.03.2000 को अपना लिखित कथन दाखिल किया था। इस आदेश को उच्च न्यायालय ने बरकरार रखा।

इसके बाद प्रतिवादी संख्या 06 ने संशोधन के लिए एक आवेदन दायर किया जिसे ट्रायल कोर्ट ने अनुमति दी और उच्च न्यायालय ने

इसकी पुष्टि की। इसलिए वर्तमान अपील।

कोर्ट ने अपील स्वीकार करते हुए:

अभिनिर्धारित किया कि 1.1 किसी अभिवचन में की गई स्वीकृति को किसी दस्तावेज में की गई स्वीकृति के समान नहीं माना जाना चाहिए। किसी पक्ष द्वारा लिस में की गई स्वीकृति उसके विरुद्ध स्वीकार्य है। (पैरा 13) (530-ई)

हरियाणा राज्य और अन्य बनाम एम.पी. मोहला (2007) 1 एस.सी.सी. 457- से लिया गया।

1.2 ए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 58 के तहत स्वीकार की गई बात को साबित करने की आवश्यकता नहीं है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 नियम 5 में प्रावधान है कि एक अस्पष्ट या स्पष्ट इन्कार को भी एक स्वीकारोक्ति माना जा सकता है, ऐसी स्थिति में अदालत वादी के पक्ष में एक डिक्री पारित कर सकती है। यह कहना एक बात है कि किसी स्वीकारोक्ति से इन्कार किए बिना, यह समझाने की अनुमति होगी कि इसे किन परिस्थितियों में किया गया था या यह गलत धारणा के तहत किया गया था या इस तरह की स्वीकारोक्ति की सीमा या प्रभाव के संबंध में एक बार रुख स्पष्ट करने की अनुमति होगी, लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि किसी व्यक्ति को उससे पूरी तरह से मुकरने की अनुमति दी जा सकती

है। (पैरा 15) (530-जी-एच; 531-ए-बी)

मोदी स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम लाधा राम और कंपनी (1976) 4 एस.सी.सी. 320; पंचदेव रारेन श्रीवास्तव बनाम कुमारी ज्योति सहाय और अन्य (1984) सप्ली. एस.सी.सी. 594; अक्षय रेस्टेराॅन्ट बनाम पी. अंजनप्पा और अन्य (1995) सप्ली. 2 एस.सी.सी. 303; बासावन जग्गू धोबी बनाम सुखनन्दन रामदास चैधरी (1995) सप्ली. 3 179; हीरालाल बनाम कल्याणमल और अन्य (1998) 1 एस.सी.सी. 278; संग्राम सिंह पी. गायकवाड़ और अन्य बनाम शांतादेवी पी. गायकवाड़ (मृतक) जरिए एल.आर.एस. और अन्य (2005) 11 एस.सी.सी. 314; भारत संघ बनाम प्रमोद गुप्ता (मृतक) जरिए एल.आर.एस. और अन्य (2005) 12 एस.सी.सी. 1; पंजाब नेशनल बैंक बनाम इंडियन बैंक और अन्य (2003) 6 एस.सी.सी. 79; राजेश कुमार अग्रवाल और अन्य बनाम के.के. मोदी और अन्य (2006) 4 एस.सी.सी. 385; ऊषा बालासाहेब स्वामी और अन्य बनाम किरण अपासो स्वामी और अन्य (2007) 5 एस.सी.सी. 602 - से लिए गए।

1.3 किसी स्पष्ट स्वीकारोक्ति का विरोध नहीं किया जा सकता है; लेकिन किसी दिए गए मामले में; इसे समझाया या स्पष्ट किया जा सकता है। हालांकि; किसी स्वीकारोक्ति के संबंध में स्पष्टीकरण देना या उसे स्पष्ट करना उसकी प्रकृति और चरित्र पर निर्भर करेगा। यह हो सकता है कि

प्रतिवादी वैकल्पिक तर्क लेने का हकदार हो। हालांकि; वैकल्पिक दलीलें एक-दूसरे के लिए परस्पर विरोधी/विनाशकारी नहीं हो सकती। स्पष्टीकरण की पेशकश की जा सकती है बशर्ते कि इसकी कोई गुंजाइश हो। वहाॅं स्पष्टीकरण दिया जा सकता है जहाॅं इसकी आवश्यकता हो। (पैरा 22, 23) (536- एच,537-ए-बी)

2.1 प्रतिवादी संख्या 06 ने अपीलकर्ता के मामले को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया। यह अपीलकर्ता की इस दलील को स्वीकार करने की हद तक चला गया कि उसके पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में आधे हिस्से का दावा करने वाले उसके मुकदमे पर फैसला सुनाया जा सकता है। वादी-अपीलकर्ता के प्रत्येक संदर्भ को प्रतिवादी संख्या 06 द्वारा स्वीकार किया गया था। एकमात्र स्पष्टीकरण जो उसके द्वारा पेश किया जा सकता था वह था कि कथित स्वीकृति उसके साथ धोखाधड़ी करके ली गई थी और इसलिए, वह इससे बाध्य नहीं थी। यदि उसने एम.पी.वी. को अपना वकील नहीं बनाया होता या लिखित कथन पर अपने हस्ताक्षर नहीं किए होते, तो 30.03.2000 को दायर उसके लिखत कथन में निहित विवाद कानून की नजर में; ‘‘स्वीकृति नहीं होता। ऐसी स्थिति में कानूनन यह माना जाना चाहिए कि उसने कोई लिखित कथन दाखिल ही नहीं किया है। इसे रिकाॅर्ड से हटा दिया जाना था और एक लिखित कथन द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना था जो उचित और कानूनी रूप से दायर किया गया था।

प्रतिवादी संख्या 06 की ओर से उठाए गए इस तरह के विवाद को ट्रायल जज और उच्च न्यायालय ने भी खारिज कर दिया है, यह दलील कि उसे अपनी स्वीकारोक्ति को स्पष्ट करने की अनुमति दी जानी चाहिए, न तो उठती है और न ही उठ सकती है। (पैरा 24-25) (537-डी-जी)

2.2 यह कहना सही नहीं है कि अन्य उत्तरदाताओं ने वसीयत की वास्तविकता से इन्कार किया है और उस पर विवाद किया है और उस संबंध में एक मुद्दा तैयार किया गया है, यदि लिखित कथन में संशोधन की अनुमति दी जाती है तो अपीलकर्ता किसी भी तरह से पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं होगा। (पैरा 26) (538-ए-बी)

डोंडापति नारायण रेड्डी बनाम डुग्गीरेड्डी वेंकटनारायण रेड्डी और अन्य (2001) 8 एस.सी.सी. 115 – विशिष्ट

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 1808/2008

सिविल पुनरीक्षण संख्या 2069/2005 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के दिनांक 25.07.2006 के अंतिम निर्णय और आदेश से

वादी की ओर से -सुधीर चन्द्र भगवती प्रसादपढ़ी, डी.के. मोंगा और एस.के. सभरवाल

प्रतिवादी की ओर से - एम.एल. वर्मा अशोक माथुर और अंशुल

नारायण

न्यायालय का निर्णय ए.बी. सिन्हा, जे. द्वारा दिया गया

1. याचिका अनुमत

2. शांति सरूप ने एक वसीयत निष्पादित की। प्रतिवादी संख्या 1, 2, 3 और 6 उसकी पुत्रियाँ हैं। प्रतिवादी संख्या 07 रितु सरूप, प्रतिवादी संख्या 02 की पुत्री है। वह दुर्घटनावश गिर गई और विकलांग हो गई।

3. वसीयत 23.09.1999 को या इसके आसपास निष्पादित की गई थी, जिसमें उसकी संपत्ति अपीलकर्ता और उक्त रितु के बराबर हिस्से में थी।

4. अपीलकर्ता ने अन्य बाताें के साथ-साथ मुकदमे की संपत्तियों पर अपने स्वामित्व की घोषणा करने और स्थाई निषेधाज्ञा की डिक्री के लिए सिविल जज सीनियर डिविजन लुधियाना की अदालत में मुकदमा दायर किया।

समन मिलने पर प्रतिवादी संख्या 06 लीला जेटली अधिवक्ता श्री एम.पी. वासुदेव के माध्यम से उपस्थित हुई। उसने वादपत्र में दिए गए कथनों को स्वीकार करते हुए एक लिखित कथन दाखिल किया।

5. प्रतिवादी संख्या 01 लगायत 05 द्वारा अपने लिखित कथन में एक प्रतिदावा दायर किया गया था, उन्होंने शांति सरूप द्वारा वसीयत के

निष्पादन से इन्कार या विवाद नहीं किया था।

6. हालांकि प्रतिवादी संख्या 06 ने अपीलकर्ताओं के दावे को पूरी तरह से अस्वीकार और विवादित करते हुए एक और लिखित कथन दायर किया। उन्होंने 28.08.2000 को पहले लिखित कथन को रिकॉर्ड से हटाने और इस आधार पर एक और लिखित कथन दर्ज करने की अनुमति के लिए एक आवेदन भी इस आधार पर दायर किया कि उसका एम.पी. वासुदेव से कोई संबंध नहीं था और न ही उन्होंने उनके माध्यम से कोई लिखित कथन दाखिल कराया था। उसने तथाकथित लिखित कथन पर दर्शित अपने हस्ताक्षरों से इन्कार किया और उसे विवादित बताया। उक्त आवेदन को विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा अनुमति दी गई थी।

7. इसके विरुद्ध अपीलकर्ता द्वारा पुनरीक्षण याचिका दायर की गई थी। उच्च न्यायालय द्वारा 15.03.2002 के फैसले और आदेश द्वारा विद्वान ट्रायल जज के दिनांक 12.09.2001 के उक्त आदेश को रद्द करते हुए निर्देश दिया कि वह पहली बार में यह जाँच करे कि क्या प्रतिवादी संख्या 06 ने कभी अधिवक्ता वासुदेव को नियुक्त किया या रिकॉर्ड पर रखे गए लिखित कथन पर हस्ताक्षर किए थे। यह निर्देश दिया गया कि यदि उक्त जाँच के निष्कर्ष उसके पक्ष में जाते हैं तो उसके लिए दूसरा लिखित कथन दाखिल करने का विकल्प खुला होगा या जो उसके द्वारा दाखिल किया गया है, उसे स्वीकार किया जा सकता है। हालांकि यह दर्शित है:

निश्चित रूप से मैं श्रीमती जेटली को आदेश 6 नियम 17 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत एक आवेदन दायर करने से वंचित नहीं कर रहा हूँ, यदि पहले बयान दाखिल करने के संबंध में श्रीमती लीला जेटली के खिलाफ निष्कर्ष दिए गए है।

8. उक्त निर्देश के अनुसरण में एक जाँच की गई और यह राय दी गई कि प्रतिवादी संख्या 06 ने वास्तव में; उक्त श्री वासुदेव को अपना वकील नियुक्त किया था और 30.03.2000 को अपना लिखित कथन दाखिल किया था। इसके विरुद्ध प्रतिवादी संख्या 06 द्वारा एक पुनरीक्षण आवेदन दायर किया गया था जिसे दिनांक 07.04.2004 के एक आदेश द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया।

9. इसके बाद उनके द्वारा 05.11.2004 को संशोधन के लिए एक आवेदन दायर किया गया था, जिसे विद्वान् ट्रायल कोर्ट ने 23.02.2005 के एक आदेश द्वारा अनुमति दी। अपीलकर्ता ने अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए उच्च न्यायालय का रुख किया और आक्षेपित निर्णय को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया:

> "इस प्रकार, मेरी राय है कि प्रतिवादी संख्या 06 को लिखित कथन में संशोधन करने की अनुमति देते समय वादी किसी भी तरह से प्रतिकूलताग्रस्त नहीं है। वसीयत को साबित करने का भार किसी भी प्रकार से वादी द्वारा निर्वहन

किया जाना है। दिनांक 30.03.2000 के लिखित कथन में क्या स्वीकारोक्ति निहित है जो वसीयत के प्रमाण के लिए प्रासंगिक या ऐसी स्वीकारोक्ति गलत तरीके से या गलत विश्वास या गलत बयानी के तहत की गई या ऐसी स्वीकारोक्ति निर्णायक है, यह ऐसे प्रश्न हैं, जिनका निर्णय केवल प्रतिवादी संख्या 06 को लिखित कथन में संशोधन करने की अनुमति देने के बाद किया जा सकता है। यह विवायक तथ्य है जिसे लिखित कथन में संशोधन के लिए आवेदन पर निर्णय लेने के चरण में तय नहीं किया जा सकता है कि क्या दिनांक 30.03.2000 के लिखित कथन में स्वीकारोक्ति निर्णायक और प्रतिवादी संख्या 06 पर बाध्यकारी है और किस हद तक।

10. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ वकील श्री सुधीर चंद्रा द्वारा प्रस्तुत करेंगे:

1) प्रतिवादी संख्या 06 को 30.03.2000 को दाखिल उसके लिखित कथन में शामिल स्वीकारोक्ति के मद्देनजर दोबारा दाखिल करने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी।

2) वह यह दलील देने के अपने प्रयास में विफल रही कि उसने श्री वासुदेव को एक वकील के रूप में नियुक्त नहीं किया था और लिखित बयान पर

अपने हस्ताक्षर नहीं किए थे, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उसे लिखित बयान में संशोधन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी। तथ्यात्मक; वह वसीयत का प्रमाणिक गवाह थी और उसने इसके तहत लाभ का दावा किया।

11. दूसरी ओर प्रतिवादी संख्या 06 की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एम.एल. वर्मा द्वारा प्रस्तुतः

(ए) स्वीकारोक्ति, ऐसा करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध साक्ष्य होने के नाते, यह दिखाने का दायित्व उस पर होगा कि यह किसी भूल के तहत या अन्यथा की गई और, इस प्रकार, लिखित कथन में संशोधन कानून में स्वीकार्य है।

(बी) प्रतिवादी संख्या 06 के अलावा, छह अन्य प्रतिवादियों ने वसीयत की वैधता से इन्कार किया था उस पर विवाद प्रस्तुत किया था जिसके अनुसार एक विवाद्यक तैयार किया गया था और इस तरह यह प्रश्न कि क्या उसने अपने पहले लिखित कथन में कोई स्वीकारोक्ति की थी या नहीं, पूरी तरह से अकादमिक है।

(सी) हालांकि स्वीकारोक्ति देने वाले व्यक्ति को आम तौर पर इससे पीछे हटने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, लेकिन इस तरह की स्वीकारोक्ति को वर्णित करने या उसे स्पष्ट करने के लिए कोई रोक नहीं है और मामले को देखते हुए लिखित कथन में संशोधन के लिए आवेदन का ऐसा हिस्सा

जो स्वीकारोक्ति को स्पष्ट करने और/या इसे स्पष्ट करने का प्रयास करता है, को बनाए रखने की अनुमति दी जानी चाहिए।

12. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के पठनानुसार:

17 अभिवचनों में संशोधन - न्यायालय कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी पक्ष को अपनी अभिवचनों में ऐसे तरीके से और ऐसी शर्तों पर परिवर्तन या संशोधन करने की अनुमति दे सकता है जो उचित हों और ऐसे सभी संशोधन किए जाएंगे जो पक्षकारों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्नों का निर्धारण के उद्देश्य के लिए आवश्यक हो सकते हैं।

बशर्ते कि सनवाई शुरू होने के बाद संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचती कि उचित परिश्रम के बावजूद पक्षकार सुनवाई शुरू होने से पहले मामला नहीं उठा सकता था।

13. किसी अभिवचन में की गई स्वीकृति को किसी दस्तावेज में की गई स्वीकृति के समान नहीं माना जाना चाहिए। किसी पक्ष द्वारा वाद में की गई स्वीकृति उसके विरुद्ध पर्याप्त स्वीकार्य है।

14. हरियाणा राज्य और अन्य विरुद्ध म.प्र. मोहला ख्(2007) 1 एस.सी.सी. 457, न्यायालय ने कहा -

"25.किसी स्वीकारोक्ति के प्रभाव के संबंध में कानून

एकीकृत नहीं है। जबकि किसी पक्ष को उसी कार्यवाही के बाद के चरण में अपनी स्वीकारोक्ति से मुकरने की अनुमति नहीं दी जा सकती है; यह भी सामान्य बात है कि इसके विपरीत की गई स्वीकारोक्ति राज्य पर बाध्यकारी नहीं होगी।''

15. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 58 के अंतर्गत स्वीकृत तथ्य को साबित करने की आवश्यकता नहीं है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 नियम 5 में प्रावधान है कि एक अस्पष्ट या स्पष्ट इन्कार को भी स्वीकारोक्ति माना जा सकता है, ऐसी स्थिति में अदालत वादी के पक्ष में डिक्री पारित कर सकती है। किसी मुकदमे पर भरोसा करते हुए या उसके आधार पर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 11 नियम 6 के प्रावधानों के अनुसरण में स्वीकृति के आधार पर भी डिक्री पारित की जा सकती है। यह कहना एक बात है कि किसी स्वीकारोक्ति से इन्कार किए बिना, यह समझाने की अनुमति होगी कि यह किन परिस्थितियों में किया गया था या यह एक गलत धारणा के तहत किया गया था या अन्य बातों के साथ-साथ स्वीकृति की सीमा या इस तरह की स्वीकृति का प्रभाव किसी के रुख को स्पष्ट करने के लिए। लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि किसी व्यक्ति को इससे पूरी तरह से इन्कार करने की अनुमति दी जा सकती है।

सामान्यतः इस संबंध में इस न्यायालय के निर्णय एक समान नहीं

थे। हम उनमें से कुछ को नोटिस करेंगे।

16. मोदी स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम लाधा राम एंड कंपनी ख्(1976) 4 एस.सी.सी. 320, में तीन न्यायाधीशों की पीठ रे सी.जे. के माध्यम से मत प्रतिपादित करती है कि -

> ''10. यह सच है कि असंगत दलीलें अभिवचनों में की जा सकती हैं लेकिन पैरा 25 और 26 के प्रतिस्थापन का प्रभाव असंगत और वैकल्पिक दलीलें नहीं दे रहा है बल्कि यह वादी को प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन में की गई स्वीकारोक्ति से पूरी तरह से विस्थापित करने की कोशिश कर रहा है। यदि ऐसे संशोधनों की अनुमति दी जाती है तो वादी को प्रतिवादियों से स्वीकृति प्राप्त करने के अवसर से वंचित कर दिया जाएगा। उच्च न्यायालय ने संशोधन के लिए आवेदन को सही ढंग से खारिज कर दिया और ट्रायल कोर्ट से सहमत हो गया।''

17. दो न्यायाधीशों की पीठ ने मोदी स्पिनिंग के बाध्यकारी दृष्टांत पर ध्यान दिए बिना पंचदेव रारेन श्रीवास्तव बनाम कुमारी ज्योति सहाय और अन्य 1984 सप्ली. एस.सीसी. 594 में कहा -

> ''लेकिन उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि

संशोधन के माध्यम से एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्वीकारोक्ति को वापस लिया जा रहा है। किसी पक्ष द्वारा की गई स्वीकारोक्ति को वापस लिया जा सकता है या उसे समझाया जा सकता है। इसलिए, यह नहीं कहा है कि संशोधन के माध्यम से एक तथ्य को स्वीकारोक्ति को वापस लिया जा सकता है।''

एक बार फिर, अक्षय रेस्टेराॅन्ट बनाम पी. अंजनप्पा और अन्य ख्1995 सप्ली. (2) एस.सी.सी. 303, में न्यायालय द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियाॅं की गई -

''हमें विवाद में कोई बल नहीं दिखता। यह स्थापित कानून है कि स्वीकारोक्ति को भी समझाया जा सकता है और यहाॅं तक कि असंगत दलीलों को भी अभिवचनों में लिया जा सकता है। यह देखा गया है कि लिखित कथन के पैरा 06 में बाद में एक निश्चित रुख अपनाया गया था जैसा कि याचिका में संकेत दिया गया है। संशोधन के लिए आवेदन में इसे संशोधित करने की माॅंग की गई थी। मामले को ध्यान में रखते हुए; हम पाते हैं कि लिखित कथन में संशोधन की अनुमति देने में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करने में उच्च

न्यायालय द्वारा कोई तथ्यात्मक अनियमितता नहीं की गई है''

बसवन जग्गू धोबी बनाम सुखनंदन रामदास चौधरी 1995 सप्ली. (3) 179 भी देखा जावे।

18. यह प्रश्न हीरालाल बनाम कल्याणमल और अन्य ख्(1998) 1 एस.सी.सी. 278, में एक अन्य डिविजन बेंच के समक्ष विचार के लिए आया। जिसमें उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए मोदी स्पिनिंग के निर्णय की पालना की गई। अक्षय रेस्टेराॅन्ट (सर्वोच्च न्यायालय) में यह माना गया था कि इसे ''पर इंक्यूरियम'' प्रदान किया गया था।

बार के द्वारा उद्धृत किए गए अन्य निर्णयों को यह कहते हुए अलग किया गया -

> ''10. नतीजतन यह माना जाना चाहिए कि जब लिखित कथन में माॅंगा गया संशोधन इस तरह का था कि वादी के मामले को विस्थापित कर देगा तो इसे इस न्यायालय की तीन सदस्यीय पीठ द्वारा दिए गए फैसले के अनुसार अनुमति नहीं दी जा सकती थी। यह पहलू दुर्भाग्य से बाद में दो विद्वान न्यायाधीशों की खंडपीठ द्वारा विचार नहीं किया गया

और जिस कारण बाद के फैसले में लिखित कथन में इस तरह की स्वीकृति के विपरीत दृष्टिकोण अपनाया गया; यह माना जाना चाहिए कि यह इस न्यायालय की तीन सदस्यीय खंडपीठ के बाध्यकारी निर्णय पर विचार किए बिना प्रस्तुत किया जा रहा था जो दृष्टिकोण बिल्कुल विपरीत है।

"11. फिर पंचदेव श्रीवास्तव बनाम ज्योति सहाय के मामले में इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय से लेवे तो उस मामले में वादी को यह कहते हुए अपने वाद-पत्र में संशोधन करने का अधिकार दिया गया था कि यद्यपि पहले उसने कहा था कि प्रतिवादी उसका सहोदर भाई था, वादी अपने वाद-पत्र में संशोधन द्वारा यह प्रस्तुत कर सकता है कि प्रतिवादी उसका भाई था और "सहोदर" शब्द को हटाया जा सकता है। उस मामले में भी वादी द्वारा रखे गए मुख्य मामले में परिवर्तन नहीं हुआ क्योंकि वादी यह कहना चाहता था कि प्रतिवादी उसका भाई था। वह सहोदर भाई था या सगा भाई यह डिग्री का प्रश्न था और जो साक्ष्य न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत

किए जा सकते हैं, की प्रकृति पर निर्भर करता था। इसलिए ''सहोदर'' शब्द का विलोपन वादी के पिछले मामले को विस्थापित करने वाला नहीं पाया गया। इसलिए वर्तमान मामले के तथ्यों पर भी, उक्त निर्णय उत्तरदाताओं के विद्वान वकील को किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं कर सकता।

12. इसलिए हमारे विचार में इस मामले के तथ्यों पर और जैसा कि पहले चर्चा की थी, उत्तरदाताओं का प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन में संशोधन करने और वादपत्र की अनुसूची ए में 10 सूचीबद्ध संपत्तियों में से शेष 7 वस्तुएँ। इस प्रकार 7 में से 5 के संबंध में उनकी स्वीकृति से पीछे हट जाने का प्रयास करने का कोई मामला नहीं बनना पाया गया थ'

19. हीरालाल (सुप्रा) को हाल ही में इस न्यायालय द्वारा संग्राम सिंह पी. गायकवाड़ और अन्य शांतादेवी पी. गायकवाड़ (मृतक) जरिए विधिक वारिसान और अन्य ख्(2005) 11 एस.सी.सी. 314, के मामले में कहा गया है -

215. प्रतिवादी 1 द्वारा की गई स्वीकारोक्ति उसके विरुद्ध स्वीकार्य थी।

216. नागिनदास रामदास बनाम दलपतराम इच्छाराम में इस न्यायालय ने निर्धारित किया कि -

> "...यदि स्वीकारोक्ति सत्य और स्पष्ट है, तो स्वीकृत तथ्यों का अब तक का सबसे अच्छा प्रमाण है। मामले की सुनवाई के समय या उससे पहले पक्षकारों या उनके एजेंटों द्वारा की गई स्वीकृति साक्ष्य अधिनियम की धारा 58 के तहत स्वीकार्य, अभिवचनों में स्वीकृति या न्यायिक स्वीकारोक्ति, साक्ष्यिक स्वीकारोक्ति की तुलना में उच्चतर स्तर पर होती है। स्वीकृति की पूर्व श्रेणी उस पक्ष पर पूरी तरह से बाध्यकारी है जो उन्हें करती है और यह प्रमाण के अधित्यजन का गठन करती है। इन्हें स्वयं पक्षकारों के अधिकारों का आधार बनाया जा सकता है। दूसरी ओर साक्ष्य के रूप में परीक्षण में प्राप्त होने वाली साक्ष्यात्मक स्वीकारोक्ति अपने आप में निर्णायक नहीं होती है। उन्हें गलत दर्शाया जा सकता है।"

(बिश्वनाथ प्रसाद बनाम द्वारका प्रसाद भी देखें।)

217. विश्वलक्ष्मी ससिधरन बनाम शाखा प्रबंधक, सिण्डीकेट बैंक में

इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि -

> ‘‘दूसरी सरी ओर यह स्वीकार किया गया है कि बाजार में मंदी के कारण वे सामान नहीं बेच सके, तैयार उत्पाद की कीमत को नहीं समझ सके और बैंक को ऋण का भुगतान नहीं कर सके। यह स्वीकारोक्ति बाद में यह दलील देने के लिए उनके रास्ते में है कि सेवा में कमी के कारण उन्हें नुकसान हुआ है।

218. उन पक्षों के द्वारा की गई न्यायिक स्वीकारोक्ति को उनके अधिकारों का आधार बनाया जा सकता है।

उसमें मोदी स्पिनिंग (सुप्रा) और हीरालाल (सुप्रा) का अनुसरण किया गया।

एक बार फिर यूनियन आॅफ इंडिया बनाम प्रमोद गुप्ता (मृतक) जरिए विधिक वारिसान ख्(2005) 12 एस.सी.सी. 1, के मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि -

> "सविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के संदर्भ में कोई संशोधन करने से पहले अदालत को कई कारकों पर अपना ध्यान देने की आवश्यकता होती है जैसे कि क्या इस तरह के संशोधन के कारण

दावेदार उसके द्वारा की गई एक स्पष्ट स्वीकारोक्ति से पीछे हटने का इरादा रखता है। ऐसी स्थिति में संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति नहीं दी जा सकती है। (मोदी स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम लाधा राम एंड कंपनी; हीरालाल बनाम कल्याण मल और संग्राम सिंह पी. गायकवाड़ बनाम शांतादेवी पी. गायकवाड़ देखें।)

20. इस स्तर पर हम इस न्यायालय के कुछ निर्णयों पर ध्यान दे सकते हैं जहाँ श्री वर्मा द्वारा मजबूत मत बतलाया है -

पंजाब नेशनल बैंक बनाम इंडियन बैंक और अन्य ख्(2003) 6 एस.सी.सी. 79, में इस न्यायालय ने मत दिया कि संशोधन के लिए एक आवेदन को उस अनुतोष को स्पष्ट करने हेतु स्वीकृत किया जा सकता है जिसके लिए वाद में भी प्रार्थना की गई थी, खासकर जब वाद में इस संबंध में दूसरे पक्ष पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़ता हो।

राजेश कुमार अग्रवाल और अन्य बनाम के.के. मोदी और अन्य ख्(2006) 4 एस.सी.सी. 385, में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के रेखांकित सिद्धांतों पर जोर देते हुए यह कहा गया कि -

"15. नियम का उद्देश्य यह है कि अदालतों को

उनके सामने आने वाले मामले की जाॅंच करनी चाहिए परिणामस्वरूप; पक्षकारों के बीच विवाद के वास्तविक प्रश्न का निर्धारण करने के लिए आवश्यक सभी संशोधनों की अनुमति देनी चाहिए बशर्ते कि इससे दूसरे पक्ष के प्रति कोई अन्याय या प्रतिकूल प्रभाव न पड़ता हो।

16. आदेश 6 नियम 17 में दो भाग हैं। जहाँ कि पहला भाग विवेकाधीन हो सकता है (है) और इसे अदालत पर छोड़ देता है कि वह अभिवचन में संशोधन का आदेश दे। दूसरा भाग अनिवार्य है (होगा) और अदालत को उन सभी संशोधनों की अनुमति देने का आदेश देता है जो पक्षकराें के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण करने के उद्देश्य से आवश्यक हैं।

17. हमारे विचार में, चूंकि मुकदमे की सुनवाई के दौरान वाद हेतुक उत्पन्न हुआ था, प्रस्तावित संशोधन को मंजूरी दी जानी चाहिए थी क्योंकि मुकदमे की मूल संरचना नहीं बदली है और केवल चाहे गए अनुतोष की प्रकृति में बदलाव था। हम यह

समझने में असफल हैं कि यदि अपीलकर्ताओं के लिए एक स्वतंत्र मुकदमा दायर करना स्वीकार्य है, तो उसी राहत को लंबित मुकदमे में शामिल करने की अनुमति क्यों नहीं दी जा सकती जिसके लिए नए मुकदमे में प्रार्थना की जा सकती है।

20....अदालत किसी पक्षकार की ऐसी दलीलों में संशोधन करने की हमेशा इजाजत देती है जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि आवेदन करने वाला पक्ष दुर्भावनापूर्वक कार्य नहीं कर रहा था। अभिवचनों में संशोधन के लिए अनुमति देने या अस्वीकार करने से संबंधित अनेक उदाहरण मौजूद हैं। इस न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न निर्णय और उसमें दिए गए प्रस्ताव व्यापक रूप से ज्ञात हैं। इस न्यायालय ने लगातार माना है कि अभिवचनों में संशोधन की उदारतापूर्वक अनुमति दी जानी चाहिए क्योंकि प्रक्रियात्मक बाधाओं से न्याय देने में बाधा नहीं आनी चाहिए।''

ऊपर बताए गए कारणों से ये निर्णय तत्काल मामले में लागू नहीं होते हैं।

21. हाल ही में, उषा बालासाहेब स्वामी और अन्य बनाम वी किरण अप्पासो स्वामी और अन्य (2007) 5 एस.सी.सी. 602 में इस न्यायालय ने कहा -

> "26. इसलिए, यह न तो लिखित बयान में की गई स्वीकारोक्ति को वापस लेने का मामला था और न ही अपलीलकर्ता द्वारा लिखित बयान में की गई स्वीकारोक्ति को रद्द करने का मामला था। जैसा कि यहाँ पहले उल्लेख किया गया है इस तरह के संशोधन द्वारा अपीलकर्ता ने स्वीकारोक्ति को बरकरार रखा था और केवल कुछ अतिरिक्त तथ्य जोड़े थे जिन्हें वादी और प्रतिवादी 2 से 8 द्वारा साबित करने की आवश्यकता है ताकि मुकदमे की संपत्तियों में शेयर प्राप्त किए जा सकें जो अपीलकर्ताओं द्वारा कथित रूप से उनके लिखित कथन में स्वीकार किए गए हैं। तद्नुसार, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता केवल वादी और प्रतिवादी 3 से 7 की मृतक अप्पासाओं के उत्तराधिकारी और कानूनी प्रतिनिधियों के रूप में मुकदमे की संपत्तियों को प्राप्त करने की वैधता के संबंध में एक मुद्दा उठा रहे हैं। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि

यहाॅं ऊपर की गई हमारी चर्चाओं के मद्देनजर, ट्रायल कोर्ट के आदेश को उलटने और लिखित बयान में संशोधन के आवेदन को खारिज करना उच्च न्यायालय के लिए उचित नहीं था।"

22. इसलिए, यहाॅं पहले की गई चर्चाओं से जो बात सामने आती है, वह यह है कि किसी स्पष्ट स्वीकारोक्ति का विरोध नहीं किया जा सकता है, लेकिन किसी दिए गए मामले में, इसे समझाया या स्पष्ट किया जा सकता है। हालांकि किसी स्वीकारोक्ति के संबंध में स्पष्टीकरण देना या उसे स्पष्ट करना उसकी प्रकृति और चरित्र पर निर्भर करेगा। यह हो सकता है कि प्रतिवादी वैकल्पिक याचिका लेने का हकदार हो। हालांकि, ऐसी वैकल्पिक दलीलें एक-दूसरे के लिए परस्पर विनाशकारी नहीं हो सकती।

23. स्पष्टीकरण की पेशकश की जा सकती है, बशर्ते कि इसकी कोई गुंजाईश हो। जहाॅं इसकी आवश्यकता हो वहाॅं स्पष्टीकरण दिया जा सकता है।

हम यह मानेंगे कि सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा किए गए संशोधनों के बावजूद, अभिवचनों में संशोधन प्रकृति में प्रक्रियात्मक होने के कारण इसे उदारतापूर्वक प्रदान किया जाना चाहिए, लेकिन अन्य सभी मामलों की तरह यह भी विवेकपूर्वक तरीके से किया जाना चाहिए।

24. इस मामले में प्रतिवादी संख्या 06 ने अपीलकर्ता के मामले को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया। यह अपीलकर्ता की दलील को स्वीकार करने की हद तक चला गया कि उसका वाद जो उसके पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में आधे हिस्से का दावा करता है, पर फैसला सुनाया जा सकता है। वादी-अपीलकर्ता के प्रत्येक तर्क को प्रतिवादी संख्या 06 द्वारा स्वीकार किया गया था। एकमात्र स्पष्टीकरण जो उसके द्वारा पेश किया जा सकता था वह यह था कि कथित प्रवेश उसके साथ धोखाधड़ी करके लिया गया था और इसलिए, जिसके चलते वह बाध्य नहीं थी।

25. यदि उसने श्री वासुदेव को अपना वकील नहीं बनाया होता या लिखित बयान पर अपने हस्ताक्षर नहीं किए होते, तो 30.03.2000 को दायर उसके लिखित बयान में निहित कथित विवाद कानून की नजर में ''स्वीकृति नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में, कानूनन, यह माना जाना चाहिए कि उसने कोई लिखित बयान दर्ज नहीं किया है। इसे रिकॉर्ड से हटा दिया जाना था और एक लिखित बयान द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना था जो उचित और कानूनी रूप से दायर किया गया था। प्रतिवादी संख्या 06 की ओर से उठाए गए इस तरह के विवाद को विद्वान ट्रायल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है, हमारी राय में श्री वर्मा की यह दलील कि उन्हें अपनी स्वीकारोक्ति को स्पष्ट करने की अनुमति दी जानी चाहिए, सही नहीं है और उत्पन्न नहीं हो सकता।

26. हम यहाॅं लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन बनाए रखने के उसके अधिकार के बारे में चिंतित है, जब उसका दूसरा लिखत बयान स्वीकार नहीं किया गया है। श्री वर्मा का प्रस्तुतिकरण है कि किसी भी घटना में अन्य उत्तरदाताओं ने वसीयत की वास्तविकता से इन्कार किया है और उस पर विवाद किया है और इसी आधार पर एक मुद्दा बनाया है और उसमें एक मुद्दे से इन्कार किया है और उस पर विवाद किया है कि यदि लिखित कथन के संशोधन को स्वीकार किया जाता है तो अपीलार्थी पर किसी भी तरह का प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। उक्त तर्क के समर्थन में, श्री वर्मा ने डोंडापति नारायण रेड्डी बनाम दुग्गीरेड्डी वेंकटनारायण रेड्डी और अन्य (2001) 8 एस.सी.सी. 115 पर पुरजोर विश्वास जताया है। न्यायालय अतिरिक्त लिखित अभिकथन प्रस्तुत करने के विषय पर चिंतित था। न्यायालय के लिए, यह चिंता का विषय नहीं था जहाॅं मुकदमे का एक पक्ष अपने द्वारा पहले की गई स्वीकारोक्ति से मुकर रहा था। इस संबंध में वादी संपत्ति में एक तिहाई हिस्से के मालिकाना हक का दावा कर रहा था। मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, पंजीकृत वसीयत दिनांक 20.08.1984 को प्रस्तुत करके वसीयत उत्तराधिकार को साबित करने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य जोड़ने की अनुमति माॅंगी गई थी। उक्त आवेदन की अनुमति दी गई थी। इसके खिलाफ दायर एक पुनरीक्षण आवेदन को भी अनुमति दे दी गई। पहले प्रतिवादी ने, प्रतिशोधात्मक उपाय के रूप में दिनांक 20.08.1994 की उक्त वसीयत की वैधता पर

सवाल उठाते हुए एक संशोधन की माॅंग की, जिसे खारिज कर दिया गया। उसके खिलाफ दायर पुनरीक्षण आवेदन और प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दायर अतिरिक्त साक्ष्य जोड़ने के आवेदन का निपटारा इस न्यायालय के समक्ष लगाए गए एक आरोपित आदेश द्वारा किया गया था। उपरोक्त तथ्यात्मक स्थिति में, न्यायालय ने कहा -

> "9. न्याय के हितों को आगे बढ़ाने और मुकदमेबाजी की बहुलता से बचने के लिए दलीलों और सबूत पेश करने का नियंत्रित करने वाले नियमों को शामिल किया गया है। यदि वादी डोंडापति नारायण रेड्डी का दावा डोंडापति तिरुमाला द्वारा निष्पादित वसीयत दिनांक 20.08.1994 पर आधारित है, रामारेड्डी, प्रतिवादी-अपीलकर्ता को प्रस्तावित संशोधन के माध्यम से पेश की जाने वाली याचिका को शामिल करते हुए अपने लिखित बयान में संशोधन की माॅंग करने का अधिकार है। इस तरह की प्रार्थना को हाइपरटेक्निकल आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। आम तौर पर संशोधन की अनुमति तब तक दी जानी चाहिए जब तक कि यह न दिखाया जाए कि संशोधन की अनुमति देना अन्यायपूर्ण होगा

और इसके परिणामस्वरूप विपरीत पक्ष के प्रति पूर्वाग्रह पैदा होगा जिसकी भरपाई लागतों से नहीं की जा सकती या उसे उस अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा जो समय बीतने के साथ उसे मिला है। संशोधन से इन्कार भी किया जा सकता है, यदि ऐसी प्रार्थना अलग से की गई हो, उसे समय से वर्जित दर्शाया गया है। न तो ट्रायल कोर्ट और न ही उच्च न्यायालय ने लिखित बयान में संशोधन के लिए प्रार्थना की अस्वीकृति को उचित ठहराने वाली किसी भी परिस्थिति के अस्तित्व में पाया है। संशोधन की अनुमति है या नहीं, ट्रायल कोर्ट अन्यथा विवादित वसीयत की वैधता तय करने के लिए बाध्य है जो वादी द्वारा दायर मुकदमे का आधार है। हमारी राय है कि निचली अदालतों द्वारा प्रतिवादी की उसके लिखित बयान में संशोधन की मांग वाली प्रार्थना को खारिज करना उचित नहीं था।

10. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वसीयत की वैधता को संशोधन के माध्यम से चुनौती देने की मांग की गई थी, वादी को इसकी

प्रामाणिकता साबित करने के लिए सबूत पेश करने का अधिकार प्राप्त हुआ। अन्यथा भी जब मुकदमे का आधार 20.08.1994 की वसीयत थी, तो न्याय के हित की मांग थी कि वादी को इसकी वैधता साबित करने के लिए अतिरिक्त सबूत पेश करने का अवसर दिया जाना चाहिए था।''

इसलिए उक्त निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होता है।

27. यह सच हो सकता है कि इस मामले में भी, ट्रायल कोर्ट दिनांक 23.09.1999 की वसीयत की वैधता के संबंध में मुद्दे का निर्धारण करने के लिए बाध्य था, लेकिन प्रतिवादी संख्या 6 का ऐसा कोई मुद्दा नहीं उठाया गया है और न ही उठाया जा सकता है। इसलिए इस निर्णय को वर्तमान मामले में लागू नहीं किया जा सकता।

28. इसलिए हमारी राय है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, आक्षेपित निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता है। इसे तद्नुसार अपास्त किया गया। लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के अपील स्वीकार की जाती है।

डी.जी. अपील अनुमत

यह अनुवाद अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्री अमित सहलोत पोक्सो कोर्ट संख्या 02, चित्तौड़गढ़, द्वारा किया गया हैं।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया हैं और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता हैं। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।